हिन्दी के ललित निबंधों में राधा–कृष्ण की लीलाओं का अलौकिक वर्णन

गजेन्द्र भारद्वाज(षोधार्थी)
रानी दुर्गावती विष्वविद्यालय, जबलपुर, मध्यप्रदेष, भारत
E-mail: gajendrabhardwajhbd@gmail.com

प्रस्तावना– साहित्य में भावों और संवेदनाओं का बड़ा महत्व है और इन दोनों की पराकाष्ठा राधा–कृष्ण के अलौकिक–प्रेम सौंदर्य के रूप सदा ही विद्यमान रही है। जहाँ भक्तिकाल का अंतिम छोर पूरी तरह से राधाकृष्ण की भक्ति से सिक्त है वहीं रीतिकाल में उनके प्रेम को श्रृंगार का रूप देकर चित्रित करने की प्रवृत्ति भी मिलती है। किंतु उद्दाम श्रृंगार का चित्रण होने पर भी प्रबल धार्मिक आधार होने पर राधा और कृष्ण दोनों के प्रेम का रीतिकालीन चित्रण मांसल नहीं हो पाया है। आधुनिक युग–प्रणेता भारतेन्दु हरिष्चंद्र स्वयं राधा–कृष्ण भक्त रहे और इसी से उन्होंने अपनी कई रचनाओं का विषय राधा–कृष्ण, उनके अलौकिक–प्रेम और उनकी भाव–संवेदनाओं को बनाया है। हिन्दी साहित्य की अत्यंत रम्य विधा कहलाने वाले ललित–निबंधों में भाव–संवेदनाएँ महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं इसीलिए राधा और कृष्ण की अनेकानेक भावपूर्ण लीलाओं का नितांत भावपूर्ण चित्रण हिन्दी के ललित–निबंधों में मिलता है।

उपलब्ध साहित्य– प्रस्तुत विषय पर विभिन्न संकलित एवं इन्टरनेट पर उपलब्ध ललित–निबंधों को आधार बनाया गया है।

शोध प्रविधि– उपरोक्त शोधपत्र हेतु वर्णनात्मक व्याख्यात्मक प्रविधि का प्रयोग किया गया है।

विमर्श– लालित्य ललित–निबंधों का अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है जो ललित–निबंधों को निबंध से पृथक करता है। आचार्य विद्यानिवास मिश्र लालित्य को राधा और कृष्ण की रम्यता से जोड़कर उसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि–''लालित्य' का संबंध उस 'ललिता' से है, जो एक ओर षिवषक्ति की समंजसता है, दूसरी ओर वह स्वयं श्रीकृष्ण का पूर्व रूप है और तीसरी ओर दर्पण में जड़ी राधा की वह छवि है जिसपर यह अनुभव करते हुए कि प्रियतम उसे देख रहे हैं– राधा मोहित हो जाती है और वह छवि ललिता बन जाती है। इन सभी कथाओं के ललिता और लालित्य का संबंध समरसता, लीला, लीला का संबंध उत्कंठा और स्वरूप–विमर्ष से है। यह सब एक रचना में मिल जाए, यह दुर्लभ है। ललित रचना दुर्लभ है। ललित रचना बिरली ही होती है, मगर रंगीनशब्दावली के बल पर भाव–रंजना के बल पर कोई ललित बनना चाहे, तो वह अलग बात है।''[1] यही दुर्लभ संयोग ललित–निबंध की पहचान है।

प्रसिद्ध ललित–निबंधकार डॉ. शिवप्रसाद सिंह अपने ललित–निबंध 'टैराकोटा के साक्ष्य' में रिपोतार्ज शैली के माध्यम से राधा–कृष्ण के महारास का चित्रण करते हुए लिखते हैं– ''नृत्य आरंभ हुआ, कलाइयों के कंगन, पैरों के पायजेब और करधनी के छोटे–छोटे घुँघरुओं की समवेत ध्वनि से दिषाएँ गूँज उठीं। यमुना की रमणरेती के बीच गौरांगनाओं से वलयित श्याम ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो पीली–पीली दमकती हुई

सुवर्णमणियों के बीच नीलमणि अपनी पूर्ण प्रभा में उद्दीप्त हो रहा हो; पैरों का लील नर्तन रेषमी दुपट्टों का तीव्र आघूर्णन, भौंहों का सस्मित वंकिम विलास, आँचल का अनायास स्खलन, कान के कुण्डलों का इन्द्रधनुषी वितान, स्तनमण्डल की अनुपन थिरकन। श्रम से पसीने की बूँदें ललाट पर छलछला उठीं, कवरी षिथिल हो गयी, नीवी की गाँठें खुल गयीं। अपरिमेय गति से नाचते हुए कृष्ण के शरीर से सटी हुई गोपियाँ ऐसी लगतीं कि काजल–काले बादलों में विद्युत की लहरें मचल रही हों, किसी की कवरी से गुँथे फूल बिखर कर पृथ्वी पर आ गये, श्वास की गरमी से किसी के वक्ष पर लगा चंदन लेप सूख गया।''[2] राधा समूची सृष्टि का आधार हैं स्वयं कृष्ण भी राधा के आश्रित होकर अपनी शक्ति पाते हैं राधा के बिना कृष्ण राजा हो सकते हैं पर उनकी दैवीय छवि बन ही नहीं सकती वे श्यामा राधा ही हैं जो कृष्ण को श्याम बनाती हैं। हिन्दी के ललित–निबंधों में प्रकृति को अपनी अभिव्यक्ति का आलंबन बनाने वाले डॉ. भुवनेष्वर प्रसाद गुरमैता स्वयं राधा और कृष्ण का सौंदर्य प्रकृति का पूरक मानते हैं वे लिखते हैं कि– ''श्रीकृष्ण का घनष्याम स्वरूप वसन्त का आभरण पाता है और राधा का मधुमय यौवन श्रीकृष्ण की कस्तूरी गंध का आमोध। पर, अकेले कृष्ण न वर्षा हैं, न राधा स्वतंत्र है। अकेले कृष्ण एक विषाल अैर उज्जवल अंधकर हैं, राधा के अभिभावकत्व में वे वर्षा हैं, पर राधा कभी अकेली हैं ही नहीं वे कृष्ण की असंख्य सुधियों के बीच हैं, वे नित्य वसन्त हैं, नित्य कौमुदी महोत्सव हैं। नित्य नूतन होने की आकांक्षा हैं, नित्य ताप हैं नित्य मरण हैं और इसीलिए महाकाली के ही पुरुषावतार श्रीकृष्ण की नित्य लीला का अधिष्ठान हैं।''[3]

विष्व के आराध्य कृष्ण हैं और कृष्ण राधा की आराधना करते हैं। क्यों न करें। जिस प्रकार भक्त का मन कृष्ण की छवि को देखकर विश्राम पाता है उसी प्रकार कृष्ण का विश्राम स्थल राधा हैं। कई गोपिकाओं के साथ रास रचाने वाले कृष्ण भले ही अपनी सोलह हजार रानियों और आठों पटरानियों के साथ घिरे रहें पर राधा यह जानतीं हैं कि उनका ह्रदय कृष्ण घर है ''राधा जानतीं थीं कि घर इसीलिए घर नहीं होता कि हम वहाँ रहते हैं और उसकी सुख–सुविधाओं को भोगते हैं। पर इसीलिए घर होता है कि हम वहाँ लौटकर आते हैं अथवा वहाँ हमारे लौट आने की संभावना रहती है। कृष्ण को जहाँ घूम–फिरकर आना है अथवा जहाँ से उनकी पहचान बनती है वह जगह नंद का धाम नहीं है; वह जगह है यमुना का पुलिन, यमुना की कछार, कछार में छाई हुई तमाल की सघन हरीतिमा, समूचा ब्रज और ब्रजवासियों का मन। यहीं और इन्हीं से जुड़कर वह ब्रजलाल बन सकते थे सो उनकी मार्गदर्षिका प्रिय सहचरी ने एक–एक करके इन स्थानों को दिखा दिया और कृष्ण सबकुछ देखते–दाखते, परखते–परखाते अपनी इस अद्भुत मार्गदर्षिका पर ऐसा आकृष्ट हुए कि उसके लिए सबकुछ छोड़–छाड़कर गहन कानन को ही वासभूमि बना लिया।''[4] 'राधा' शब्द की व्याख्या आराधना के ही अर्थ में ही है कृष्ण के द्वारा जो आराधित है वही राधा है। 'कृष्णेन आराध्यते' इति राधा। 'कृष्णं समाराधयति सदा' इति राधिका। ''उन्हें बस एक ही आकांक्षा और एक ही साध रह जाती है कि कृष्ण संतुष्ट रहें और वे उन्हें अपना सर्वोत्तम दे सकें। प्रतिदान में भले ही कितना ही अपमान और कष्ट क्यों न मिले। कहना न होगा कि उन्हें इसके बदले में भरपूर अपमान और कष्ट मिला भी और उन्होंने इस अपमान और कष्ट को बड़े ही साहस के साथ और धैर्य से सहा भी। गली–कूचों, हाट–बाट और राह–घाट पर उन्हीं के प्रेम की चर्चा होने लगी, पर उन्होंने हर लोकनिन्दा का उत्तर और अधिक कृष्णानुराग से दिया।''[5]

कृष्ण की समस्त भाव–संवेदनाओं की प्रतिमूर्ति राधा हैं और यह बात राधा को पता है फिर भी वे कृष्ण के द्वारा बार–बार ठगी जातीं हैं। यहाँ राधा का ठगा जाना कृष्ण की चतुराई नहीं बल्कि स्वयं राधा की अभिलाषा के कारण संभव होता है। डॉ. रामअवध शास्त्री जी ने राधा के इस प्रकार ठगे जाने की व्याख्या करते हुए लिखा है– जब कोई स्वयं अपने ठगने का प्रयास करता है। तो 'ठगोरी' होती है।...ऐसा

ही एक प्रयास राधा और कृष्ण ने किया था। बेचारे कहीं प्रेमपाष में आबद्ध थे, तभी वहाँ कोई गुरुजन आ गये। बड़ी झेंप हुई थी उस समय इन युगल–प्रेमियों को। होनी ही चाहिए थी, आखिर उनकी चोरी जो पकड़ी गयी थी। उन्होंने अपनी इस झेंप को मिटाने के लिए खूबसूरत बहाना बनाया, पर उनका यह बहाना बेकार तो हो गया ही, उल्टे हँसी के पात्र और बन गये। एक–दूसरे के ध्यान में इतने लीन थे कि जल्दी में राधा खाली बर्तन में दही मथने लगी तो कृष्ण गाय के भ्रम में बैल को ही दुहने के लिए बैठ गये।''[6]

पहले ही परिचय में राधा जान गईं थीं कि कृष्ण का स्वभाव कुछ ऐसा है कि उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे वाली कहावत उनपर सही बैठती है चोर स्वयं कृष्ण के मन में था पर उन्होंने राधा को उलाहना दी। कृष्ण जो अभी तक ब्रज की गलियों में ही खेलते–कूदते रहे हैं और आज पहली बार अपने ग्वाल–बालों के उकसावे में आकर कालिंदी तट पर पहुँच आए। यह राधा का दैवीय आकर्षण था या दैवीय संयोग वरना अन्यथा यषोदा मैया और नन्दबाबा के मना करने के बाद भी वे यहाँ कभी नहीं आते। तभी उनकी नज़र राधा पर पड़ी। ''यह रूपसी कौन? कहाँ रहती है? किसकी नंदिनी है? कभी इस खोरी में तो देखी नहीं गई क्या यह प्रतिदिन यहाँ इसी समय खेलने आया करेगी? और यदि आये तो फिर क्या पूछना? रस की सरिता ही उमड़ पड़े। लेकिन इन सब बातों की जानकारी मिले तो मिले कैसे? किसी से कुछ पूछूँ तो पता चले, पर भला पूछूँ कैसे? लोग क्या कहेंगे कि कितना ब्रीड़ाहीन है। सलोना मुखड़ा क्या देखा कि रीझ उठा। अभी उम्र ही क्या है? यौवन तो अभी आकर किषोरावस्था की देहरी पर खड़ा हुआ है। अभी से ऐसे रंग–ढंग हैं तो बाद में राम ही बचाएं। इतने सारे अचानक उठे प्रष्नों से वे संभल नहीं पाये थे। कृष्ण का मन इस अपरिचिता को लेकर तरंगायित हो उठा था। अब उनका मन खेलने में रस नहीं था। उनका सारा उत्साह खेल से हटकर इस अनुपमा पर बरसने के लिए लालायित हो रहा था। वे किसी भी स्थिति में रूप की इस साम्राज्ञी का परिचय जानना चाह रहे थे तो उन्होंने सूरदास के शब्दों में पूछ ही लिया–

'बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहसि काकी है बेटी, देखी नहीं कहूं ब्रज खोरी।।'

सूरदास भोली राधिका ने तो जैसे–तैसे स्याम के इन प्रष्नों का उत्तर दे दिया और कृष्ण भी संतुष्ट होकर 'खेलन चलो संग मिलि गोरी' कर दिये थे। पर सोचता हूँ कि धर्म, दर्षन, साहित्य और संस्कृति के विविध क्षेत्रों में राधा का जो स्वरूप बिखरा पड़ा है और उन सभी के महायोग से जिस राधा का स्वरूप निर्मित होता है कहीं वही राधिका सचमुच प्रकट हो जाय और कृष्ण उनसे इसी प्रकार का प्रष्न करें तो भला वे इसका क्या उत्तर देतीं। वे कैसे कह सकतीं थीं, 'नागर तुम तो इतने भुलक्कड़ हो गये कि मुझे ही भूल गये। कान्हा, तुम मुझे नहीं, अपने आपको ही भूल गये हो। अरे, मेरे विषय में जानना था तो स्वयं अपने आपको ही जान लिए होते फिर मेरे विषय में जानने के लिए कुछ शेष ही नहीं रह जाता। रही बात मेरी तो जो तुम हो वही मैं हूँ और जो मैं हूँ वही तुम हो। हमारे–तुम्हारे पार्थक्य कहाँ है? राधा के इस संभावित उत्त्र की पुष्टि कम–से–कम हमारे पुराण तो करते ही हैं।''[7]

पुराणों में राधा की उत्पत्ति के लेकर कई कथाएँ मिलती हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण के श्रीकृष्ण खंड का 48वाँ अध्याय कहता है कि कभी वृंदावन में जब कृष्ण रास मंडल में सिंहासनारूढ़ थे, एकदिन उनके मन में रमण की इच्छा बलवती हुई। और इस इच्छा पूर्ति हेतु वे दो हिस्सों में बँट गए। उनका दक्षिणांग तो कृष्ण ही रहा किंतु वामांग अनुपम रूप–छवि संपन्न राधा के रूप में प्रकट हो गया। कहा जाता है कि प्रकट होते ही राधा, कृष्ण के चरणों में पुष्प अर्पित करने के लिए दौड़ गईं। शायद इसीलिए उनका नाम राधा है।

कृष्ण के प्रति राधा की निष्ठा, आत्मविष्वास और आत्मसमर्पण अद्वितीय है जिसे समझना और समझाना दोनों ही शब्दकोषों के परे है। उसे तो बस चैतन्य महाप्रभु जैसे विरले ही समझ सकते हैं। ब्रज की इस ललना को समझने वालों का हृदय फटकर हाथ हो आता है। मीरा ने इसे समझने का प्रयास किया था जिससे वे स्वयं राधा हो गयी थीं। कृष्ण भी जब स्वयं राधामय हो गये थे तभी राधा को समझ पाये थे, ''न समझा होता तो यों ही अपनी सहस्त्राधिक वल्लभावों और उनमें भी अति निकटस्थ ललिता, श्यामला, धन्या, हरिप्रिया, विषाखा, शैव्या, पद्मा, चद्रांवली और राध में से केवल राधिका पर ही न्यौछावर न होते और न जब कभी राधा के प्रति अपने अनुराग के विषय में मुँह खोलना पड़ता तो यह कहते कि उस अभिरामा के बिना तो कुछ सुहाता ही नहीं। न दिन अच्छा लगता है न रात सुहाती है। अन्य रमणियों और द्वाराका की समस्त संपदाओं के बीच भी मैं विरागी बना हूँ–

'से बिनु राति दिवस नहि भावइ,
तहि रहल भय लागी।
आन रमनि संगे राजसंपदा,
भोज आछिय जैसे विरागी।'[8]

प्रबल कृष्णानुराग के कारण राधा का मन उनके गोप–गोपिकाओं के साथ अनुराग या विहार करके की बात से भी कसमसा उठता है। एक साधारण प्रेमिका की तरह उनका भी सारा उत्साह ठंडा पड़ जाता है। वे आत्मग्लानि से भर उठतीं हैं कि आज तक मैं जिसे अपना सर्वस्व समझती रही वह ऐसा निकला कि मुझे विस्मृत कर अन्य गोपिकाओं के साथ विहार कर रहा है। क्षुब्ध मन से राधा सखियों से कहतीं हैं कि मुझे दूर से ही कृष्ण को दिखा तो ताकि मैं भले ही वे मेरी परवाह नहीं करते परंतु वे हैं तो मेरे ही। डॉ. रामअवध शास्त्री अपने ललित–निबंध 'बूझत स्याम कौन तू गोरी' में लिखते हैं– ''सखियों से जब राधा की ऐसी स्थिति नहीं देखी गई तो कृष्ण के पास संदेषा भेजा कि नाथ! अब राधा पर कृपा करें। उसका विरह देखा नहीं जाता। वह बेचारी वासभूमि में आपकी प्रतीक्षा कर–करके थक गई है। उसका शरीर क्षीण हो चुका है उसने चंदन का लेप लगाना छोड़ दिया है। चंद्र किरणों से वह दूर भागने लगी है। मलय की समीर तो उसे डसने लगा है। हर क्षण, हर पल आपका ही स्मरण करती रहती है और आपके ही ध्यान में डूबी रहती है। जब कभी आकाष में काले–काले मेघ घिर आते हैं तो वह आपको आया हुआ जानकर आलिंगन के लिए मचल उठती है। कभी वह आपको स्मरण कर हँसती है तो कभी रोने लगती है और जब रोती है तो उसके नेत्रों से बहने वाले आँसू ऐसे लगते हैं मानो उसके मुख चंद्र को किसी राहु के दांतों ने डस लिया हो और अमृत की घार बह रही हो।''[9]

राधा की सखियों से अपनी हृदयमालिनी के ऐसे दारुणिम विरह को सुनकर कृष्ण भी भाव–विवह्ल हो गये। अपराध बोध से ग्रस्त उन्होंने सोचा कि मैंने राधा की उपेक्षा कर दी उसने मुझे कल्पनातीत स्थिति में देख लिया था फिर भी मैंने उसे मनाने का उपक्रम नहीं किया। बस फिर क्या था राधा के कृष्ण के प्रति ऐसे लगाव, ऐसे अनुराग और ऐसे आकर्षण को देखकर ''कृष्ण अपने ही अर्धांग पर मुग्ध हो उठे। फिर तो संदेषों का क्रम आरंभ हो गया। जहाँ राधा को पहुँचना चाहिए था वहाँ राधा नहीं पहुँचा पाती और जहाँ कृष्ण को पहुँचना चाहिए वहाँ कृष्ण नहीं पहुँचते। बस एक–दूसरे के लिए बिसूरते रहते हैं। एक–दूसरे की उपस्थिति में अनुपस्थिति का और अनुपस्थिति में उपस्थिति का अनुभव करते रहते हैं।''[10] परंतु कृष्ण के प्रति राधा की सरलता और समर्पण छलिया कृष्ण को स्वयं के स्वभावानुसार क्रत्रिम लगता है वे उसे बनावटी जान राधा की परीक्षा लेने जा पहुँचते हैं और ''ललिहारी बनकर राधा के पास पहुँचते हैं और उनसे गोदना

गोदवा लेने का आग्रह करते हैं। उस समय राधिका प्रिय के ध्यान में ऐसी निमग्न रहीं कि सामने खड़े प्रिय को ही पहचान न सकीं और कहती हैं कि मेरे अंग–प्रत्यंग पर कृष्ण की लीलाओं को अंकित कर दो। मेरे गालों पर गोविंद, माथे पर मुरलीधारी, होठ पर हठीले स्याम, कान पर कुंजबिहारी, गले पर गोपाल, पलकों पर प्यारे स्याम, बाँह पर ब्रजराज, कलाई पर छलिया कृष्ण, कुहनी पर कुँवर कन्हाई, अंगुलियों पर वंषीबजैया, छाती पर छबीले छविराज, उर पर माखनचोर और कमर पर काली कमलीवाला लिख डालो। बदले में भरपूर दान दूँगी। राधिका की ऐसी भावस्थिति और ऐसी आकांक्षा पर कृष्ण मुग्ध हो उठते हैं तथा बहुत देर तक अपनी इस भावमयी सहचरी को देखते रहते हैं और देखते–देखते स्वयं उसके भावकालोक में लीन हो जाते हैं, फिर गोदना गोदनेवाला और गोदना गोदवाने वाली दोनों का भेद समाप्त हो जाता है। और फिर जिन लीलाओं को राधिका अपने अंग–प्रत्यंग पर अंकित कराना चाह रही हैं वे लीलाएँ और उन लीलाओं का चतुर नायक तो पहले से ही उनकी सांस–प्रतिसांस में समाहित है।''[11] राधा की प्रत्येक धड़कन, रोम–रोम पर कृष्ण का नाम उसी तरह अंकित है जिस तरह हनुमान के रोम–रोम में राम का नाम है, यदि कोई स्थान शेष दिखाई दे तो ही वहाँ कुछ अंकित किया जाये। कृष्ण की दुविधा बढ़ जाती है कि कहाँ आकर फँस गए। लेने तो परीक्षा आया था और उल्टी खुद ही देनी पड़ रही है। मजबूर कृष्ण क्या करते अपने असली रूप में आ गए। फिर क्या हुआ इसका कुछ भी उल्लेख करने में वेदों और पुराणों के पास शब्द नहीं हैं पर अनुमान लगाया जा सकता है कि शायद प्यार के नवनीत के भूखे कृष्ण राधा मैया के चरणों में गिर पड़े हों, जीवन में शायद उनके पहली बार उनके अधरों पर काठ की वंषी के स्थान पर राधा के सुरों की तरंग लहरी उठी हो।

डॉ. विष्वनाथ प्रसाद ने भी राधा और कृष्ण की लीलाओं को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है वे उनके बीच खेली जाने वाली होली का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि– ''अहीरों की भीर में उनका मन सहज हो गया है। यहाँ राधा–कृष्ण हमारे और आपकी तरह सामान्य जन दिखाई पड़ते है–

'फाग की भीर अहीरन की, गहि गोविंद लै गई भीतर गोरी।
भाय करी मन की पद्माकर, ऊपर डारि अबीर की झोरी।।
छीनि पतंबर कंबर ते सु बिदा दई, मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाइ, कह्यो मुसुकाइ, लला फिरि अइयो खेलन होरी।।''[12]

डॉ. श्यामसुंदर दुबे अपने ललित–निबंध 'फाल्गुनी संध्या का राधा भाव' में प्रकृति का संबंध राधा के प्रति कृष्ण के समर्पण से जोड़ते हुए लिखते हैं– ''वर्षा में भीगते–भीगते शीत में सिहरते सिकुड़ते और ग्रीष्म में तपते झुलसते लेकिन वसंत में इनका अलग स्वरूप हो जाता है। षिरीष पर धीरे–धीरे पीलापन उभर आता है। बारीक–बारीक से पुष्प स्तवक उसे ढँक देते हैं और वह गदबदाया सा, समुत्सुक–सा, झबरीला–सा दखिनैया के झोंकों में झूमने लगता है। तमाल की गोल देह को जैसे रोमांच हो आता है। दोनों की यह मिला–भेंटी एक अजीब दृष्य उपस्थित कर देती है। तमाल डहडहा होकर आरक्तवर्णी हो उठता है। षिरीष के पास से उसके शीत विलगित पत्ते एक–एक करके गिरने लगते हैं और षिरीष की फुदकियाँ जैसे हल्के फूलों से पूरा वातावरण भर जाता है। एक क्षण को आभास होने लगता है कि कन्हैया ने अपना पीतांबर और मुकुट को राधिका के चरणों में रख दिया है।''[13] बुंदेलखण्ड–निमाड़ और मालवा की लोक त्रिवेणी के पुरोहित ललित–निबंधकार डॉ. नर्मदाप्रसाद सिसोदिया अपने क्षेत्र में की जाने वाली नाड़ी पूजा के दौरान गाये जाने वाले राधा–कृष्ण के लोकगीतों का उल्लेख करते हुए लिखते हैं– ''हमारे संस्कारों में हमारी देह मे गाँच कर, गलर कर धूल, खेत की माटी की पुलक, खलिहान की उड़ती छारी, गोया के

कीचड़ के छींटे, माँ के उपले पर चित्रकारी, सबेरे–सबेरे मथानी के नवनीत की गंध, कुम्हार के चके की ललित छबि हमें कैसे बिसराती। आज डैइया में पतला सा छरहरा हखाया हल चला रहा है और उसकी दुलहेन डुली से दुल्ली में नपे–तुले बीज डालती है। हरवाया राधा के मन की बात हुलर में गाता है। अखण्ड रस का सोता बहता है 'श्री कृष्ण जी आए पावने। जब बाके पावने मेड़ पे आये अरे बाकी गली में फूली फुलवार। श्रीकृष्ण जी आए पावने' कैसे! बीज डाले थे उसने जैसे चार–चार अंगुल पर।'' [14]

डॉ. श्रीराम परिहार के ललित–निबंध 'वासंती पत्र पर लिखा निसर्ग काव्य' में महारास के स्थान पर वसंत रास का चित्रण करते है। महारास किषोर मन की इच्छाओं का संपुंजन है तो वसंत रास आत्मोत्सर्ग और यौवन का आत्मदान है। वे लिखते हैं– ''राधा की सखी राधा से यही कहतीं हैं कि राधा! मान छोड़ दे। यह समय सबकुछ कृष्ण को अर्पण करने का है आत्मोत्थान का है। 'रसराज' श्रीकृष्ण के साथ नृत्य की ताल, लय, स्वर, गति सबकुछ बन जाने का है। 'माधव' हो जाने का है। मधु हो जाने का है। जीवन का परिपक्व होकर पुष्पित और फलित होने का है इसीलिए वसंत के रास में एक अविकल रागिनी बजती है। एक अटूट लय संपूर्ण वानस्पतिक चेतना में समाकर उमग–उमग जाती है। रस की गागर छलकने लगती है। धरती फूलों की हो जाती है। आकाष फूलों का हो जाता है। हवा में गंध फूलों की भर जाती है। जल का तारल्य फूलों में मधु बनकर रमता है। चारों तरफ उर्ध्वचेतना की अग्निषिखाएँ जलने लगती हैं। जीवन समय के वृत पर मुकुलित और उत्फुल्लित हो उठता है।''[15] डॉ. जयप्रकाष मानस ने अपने ललित–निबंध 'भोग की शक्ति' में भक्ति की शक्ति को राधा को माधव और माधव को राधा बनने संबंधी व्याख्या करते हुए भावातिरेकी सुंदर चित्रण किया है। वे भक्ति का उदाहरण द्रोपदी के समर्पण, मीरा की करुण पुकार और सूरदास की ललकार से करते हुए लिखते हैं कि उनकी सरीखी भक्ति होने पर मीरा का एकतारा बन जाते हैं और द्रोपदी के चीर की तरह अपनी कृपा को बढ़ाते जाते हैं। वे चाहते हैं कि भक्त उनके आगे रिरियाये नहीं बल्कि सूरदास की तरह उन्हें चुनौती दे और कहे कि–

''बाँह छुड़ाये जात हौ अबल जानि के मोंहि।
हृदय से चले जाव तो मर्द बखानौ तोहीं।।''[16]

कृष्ण अपने भक्त में विनय की बजाय राधा की तरह आत्मविष्वास, श्रृद्धा और अनुराग का आकर्षण चाहते हैं उसी के वषीभूत वे कभी ऊखल में बँध जाते है, कभी गायें चराने लगते हैं, कभी माखन की चोरी भी करते हैं वे अपना अपमान भी सह सकते हैं किंतु भक्तों का नहीं। अपना वचन तोड़ सकते हैं किंतु भक्तों के वचन को हर हाल में निभाते हैं। वैकुण्ठ छोड़ सकते हैं भक्तों का हृदय–वैकुण्ठ नहीं। गोपियाँ कृष्ण के चमत्कार से नहीं उनकी वंषी से उनके रास से उनकी सहजता पर मुग्ध होतीं थीं। डॉ. जयप्रकाष मानस 'कृतार्थता की आकांक्षा और भागवत्' में लिखते हैं कि ''माधव यदि रसमय विग्रह हैं तो सोलह हजार गोपिकाओं की राषिभूत पीड़ा की पयार्य राधा मिठासमय प्राणरासेष्वरी'' हैं। राधारासेष्वरी की आल्हादिनी शक्ति हैं। महाभावरूपा। आधा प्रकृति। नित्य लीला सहचरी।''[17]

उपसंहार– हिन्दी के ललित–निबंधों में राधा और कृष्ण की अनेकानेक लीलाओं का अलौकिक चित्रण हुआ है। इन लीलाओं में उनके प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले मान–मनौतीयुक्त प्रेम एवं महारास के पीछे छिपे गूढ़ और अव्यक्त रस का चित्रण करते हुए हिन्दी के संवेदनषील ललित–निबंधकारों ने राधा के अनुराग रंजित वैराग्य और समर्पण युक्त कर्म का कहीं मर्मभेदी करुण चित्रण किया है तो कहीं आल्हादकारी युगल–क्रीड़ाओं के माध्यम से भक्त और भगवान के अटूट प्रेम को व्यक्त करने का प्रयास किया है। डॉ.

षिवप्रसाद सिंह, डॉ. रामअवध शास्त्री, डॉ. श्यामसुंदर दुबे, डॉ. श्रीराम परिहार, डॉ. नर्मदा प्रसाद सिसोदिया और डॉ. जयप्रकाष मानस जैसे संवेदनषील ललित–निबंधकारों ने राधा और कृष्ण की लीलाओं में छुपे उस 'राधा' तत्व का अन्वेषण करने का प्रयास किया है जिसे मीरा और सूरदास जैसे भक्तों ने ढूँढ कर कृष्ण को स्वयं के आधीन कर लिया था।

संदर्भ–

1. लोक और वेद में डूबा व्यक्ति : आचार्य विद्यानिवास मिश्र, राममूर्ति त्रिपाठी, अमृतपुत्र, संपा.– डॉ. कुमुद शर्मा, प्रभात प्रकाषन, दिल्ली, प्रथम संस्करण– 2001, मूल्य– 350 रुपये, पृष्ठ– 121
2. कल्पना, वर्ष–10, अंक–12, दिसम्बर 1950
3. चंपक उदास क्यों, भुवनेष्वर प्रसाद गुरमैता, समीक्षा प्रकाषन, दिल्ली, प्रथम सं.– 2005, पृ.–25
4. बूझत स्याम कौन तू गोरी, डॉ. सीदति राधा वासगृहे, रामअवध शास्त्री, कंचन पब्लिकेषन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण– 1991, मूल्य– 75 रुपये, पृ.–35
5. वही, पृ.–15
6. वही, पृ.–13
7. वही, पृ.–14–15
8. वही, पृ.–17
9. सीदति राधा वासगृहे, डॉ. रामअवध शास्त्री, वही, पृ.–38
10. सीदति राधा वासगृहे, डॉ. रामअवध शास्त्री, वही, पृ.–39
11. वही, पृ.–15
12. चौरे का दीया, कैसी ये धूम मचाई, डॉ. विष्वनाथ प्रसाद, वाणी प्रकाषन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण– 2000, मूल्य– 200रुपये, पृ.–112
13. डॉ. श्यामसुंदर दुबे संवेदना और सृजन, डॉ. कमोद सिंघई, विष्वभारती पब्लिकेषन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2004, मूल्य–400, पृ.–205
14. धरती का लोकराग नाड़ी पूजा, जून–जुलाई2006 कला–समय, डॉ. नर्मदाप्रसाद सिसोदिया, पृ. –21
15. वासंती पत्र पर लिखा निसर्ग काव्य, डॉ. श्रीराम परिहार, 29 अप्रैल 2012 इन्टरनेट से प्राप्त ललित–निबंध
16. भोग की शक्ति, डॉ. जयप्रकाष मानस, इन्टरनेट से प्राप्त ललित–निबंध
17. कृतार्थता की आकांक्षा और भागवत्, डॉ. जयप्रकाष मानस, इन्टरनेट से प्राप्त ललित–निबंध